प्यारे भाई रामसहाय,

स्वयं प्रकाश

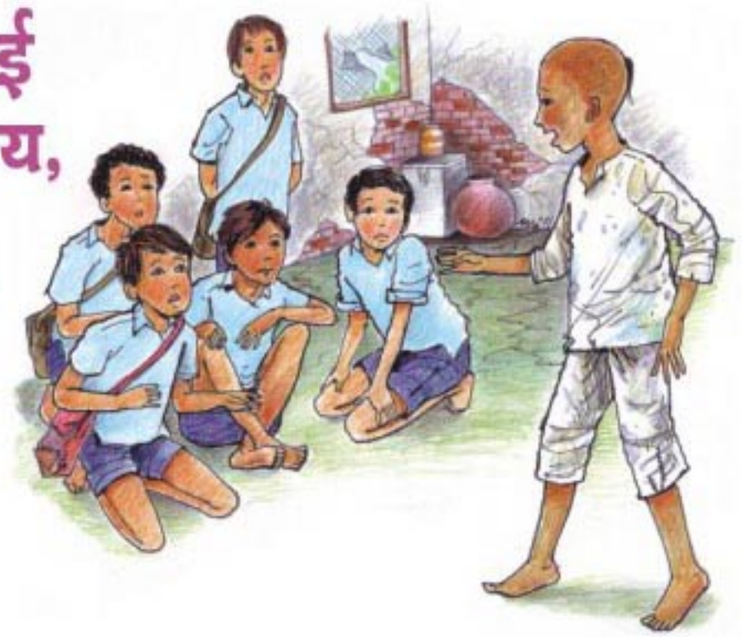

बात तब की है जब मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था।

हमारी कक्षा में अमृतलाल नाम का एक लड़का था। प्यार से सब उसे "इम्मी" कहते थे। इम्मी फुटबॉल का बहुत अच्छा खिलाड़ी था। वह न सिर्फ स्कूल की फुटबॉल टीम में था बल्कि सम्भाग की टीम में भी खेल चुका था। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। कई बार वह समय पर फीस जमा नहीं करवा पाता था और उसे अक्सर अपनी फीस माफ करवाने के लिए इस-उसके पीछे घूमते देखा जा सकता था। उससे कहा गया था कि जिस दिन उसका चयन राज्य स्तरीय टीम में हो जाएगा, उसकी फीस माफ कर दी जाएगी। नतीजा यह कि स्कूल के बाद अँधेरा होने तक वह स्कूल के मैदान पर फुटबॉल खेलता रहता – चाहे अकेला ही या दौड़ते हुए मैदान के चक्कर लगाता रहता।

एक दिन सुबह-सुबह पता चला कि इम्मी के पिताजी की मृत्यु हो गई है। हमें बड़ा दुख हुआ। पूरी कक्षा पर जैसे पाला पड़ गया। आधी छुट्टी में जब बाहर निकले तो सड़क से इम्मी के पिताजी की शव यात्रा निकल रही थी। सबसे आगे एक आदमी इम्मी की बाँह थामे चल रहा था। इम्मी के हाथ में एक छींका था जिसमें एक धुँआती मटकी रखी थी। पीछे-पीछे उसके पिताजी की अर्थी और अर्थी के साथ चलते बीच-पच्चीस लोग।

तीसरे दिन बालकिशन और राधेश्याम ने आपस में कुछ बात की और हम सबको बुलाकर कहा कि हम लोगों को इम्मी के यहाँ "बैठने" जाना चाहिए। तब तक मुझे पता नहीं था कि बैठने जाने का मतलब अफसोस ज़ाहिर करने जाना होता है। बालकिशन और राधेश्याम के सुझाव से सब सहमत थे। लेकिन जब अशोक ने कहा कि सब सफेद कपड़े पहनकर जाएँगे तो मामला ज़रा उलझ गया। सबके पास तो सफेद शर्ट-पेन्ट था भी नहीं, एक-दो के पास था भी तो धुला हुआ नहीं था या फटा हुआ था। दूसरे, सफेद कपड़े पहनने के लिए स्कूल की छुट्टी के बाद पहले घर जाना पड़ता, फिर स्कूल आना पड़ता। जबकि अधिकाँश के लिए स्कूल की छुट्टी के बाद सीधे स्कूल से इम्मी के घर जाना सुविधाजनक था। वैसे भी इम्मी का घर स्कूल से ज़्यादा दूर नहीं था।

तो अगले दिन हम लोग स्कूल से सीधे इम्मी के घर गए – "बैठने"।

इम्मी का घर खूब सारे पेड़ों से घिरा एक खण्डरनुमा, लेकिन हवादार एकमंज़िला मकान था जो इस समय सूना पड़ा था। हम बाहर खड़े संकोच में पड़े ताका-झाँकी कर रहे थे। इतने में एक बड़ी उम्र की लड़की ने हमें देखा और पूछा, "कौन चाहिए? इम्मी? आओ, आओ। या जाओ। इम्मी ss... तेरे दोस्त आए हैं।"

बोलते-बोलते लड़की मकान के पीछे कहीं चल गई।

हम चुपचाप सरकते हुए भीतर घुसे और कमरे के नंगे-ठण्डे फर्श पर एक-दूसरे से सटे-सटे पालथी मारकर बैठ गए।

चार-पाँच मिनट बाद इम्मी दिखाई दिया। अपने नाप से कहीं छोटा गुसा-मुसा सफेद कुरता-पजामा पहने, घुटा हुआ सिर और पीछे छोटी-सी चोटी। पहचान में नहीं आ रहा था। इम्मी ज़ोर-ज़ोर से बोलता हुआ भीतर आया, "मैं सोच ही रहा था कि स्कूल से भी कोई न कोई तो आएगा ज़रूर। और? क्या हाल हैं? कैसा चल रहा है? कल गणित का टेस्ट हुआ था क्या? और गहलोत सर के क्या हाल हैं? स्टेट में सिलेक्ट करवा देते मेरे को तो कम से कम जूता और जर्सी तो मिल जाती। पर, उनकी तो फरमाइशें ही गज़ब! अरे यार, भार्गव आ रहा है क्या? मेरी गणित की कॉपी भार्गव के पास ही रह गई है। खैर, उससे कहना वही रख ले। अब मुझे उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

"तेरे पिताजी को क्या हुआ था, इम्मी?" अशोक ने पूछा।

"उनको तो टीबी थी न! बहुत दिनों से!" इम्मी ने ऐसे कहा जैसे यह बात अन्य सभी की तरह हमें भी मालूम होनी चाहिए थी।

इतने में ही वह बड़ी लड़की पीतल के एक लोटे में ठण्डा पानी ले आई। साथ ही पीतल का एक गिलास भी। प्यास तो हम सबको लगी ही थी। सबने पानी पिया।

फिर कुछ शोर जैसा सुनाई दिया तो इम्मी उठकर पीछे गया, तुरन्त लौटकर आया तो हाथ में आठ-दस अमरूद थे। बोला, "अमरूद खाओगे? अपने बगीचे के हैं। लो, खा लो। कुछ अमरूद तोतों के कुतरे हुए हैं। मालूम है ना, तोतों के कुतरे हुए बहुत मीठे होते हैं। लो...!" वह एक-एक अमरूद फेंकता गया। हम कैच करते गए। समझ में नहीं आ रहा था खाएँ या न खाएँ, पर इम्मी खुद खा रहा था। हमें सकुचाते देख उसने बेतकल्लुफी से कहा, "अरे, खाओ, खाओ। ऐसा कुछ नहीं। हमारे यहाँ चलता है।"

संकोच के मारे हम धीरे-धीरे खाने लगे। अमरूद मीठे थे। और भूख तो लगी ही थी। इम्मी बोला, "तोते है ना, इत्ते आते हैं कि क्या बताऊँ। और खाएँ तो खाएँ, चलो कोई बात नहीं, पर साले कच्चे-कच्चे भी ज़रा-सा कुतरकर नीचे गिरा देते हैं। हमने पेड़ पर जाली भी बिछाई, तो पट्ठे जाली को ही काट गए। और खाओगे? अरे यार, तुम लोग पीछे ही क्यों नहीं चले चलते? जक्कू को चढ़ा देंगे, वो तोड़-तोड़कर देता जाएगा। बाकी कोई मत चढ़ना। अमरूद की डाली बहुत कच्ची होती है।" बोलते-बोलते वह चल पड़ा।... पीछे-पीछे हम...। घर के पिछवाड़े अमरूद के बड़े-बड़े दो पेड़ थे। कुछ छोटे बच्चे अमरूद तोड़ और खा रहे थे। हमें देखकर वे चले गए। हम अमरूद खाने में लग गए और थोड़ी देर के लिए भूल ही गए कि हम यहाँ अमरूद खाने नहीं, बैठने आए थे।

कोई घण्टे भर बाद बाहर निकलने लगे तो मज्जू ने इम्मी से पूछा, "स्कूल कब आएगा?"

इम्मी बोला, "अब नहीं आऊँगा।"

राधेश्याम ने पूछा, "तो फिर क्या करेगा?"

इम्मी बोला, "सब्ज़ी का ठेला लगाऊँगा। जहाँ बाऊजी लगाते थे – मण्डारी मील के सामने, वहीं लगाऊँगा। काका गाँव से सब्ज़ी लाते हैं। उनके दोनों बेटे मील के आगे लगाते हैं। मैं इधर लगाऊँगा। दिन के पचास रुपए भी कमाऊँगा तो भोत है यार। मैं हूँ और माँ है। और है कौन? एक बहन थी, उसकी शादी कर दी। वैसे आदमी पढ़-लिखकर भी क्या करता है? काम धँधा ही तो करता है।"

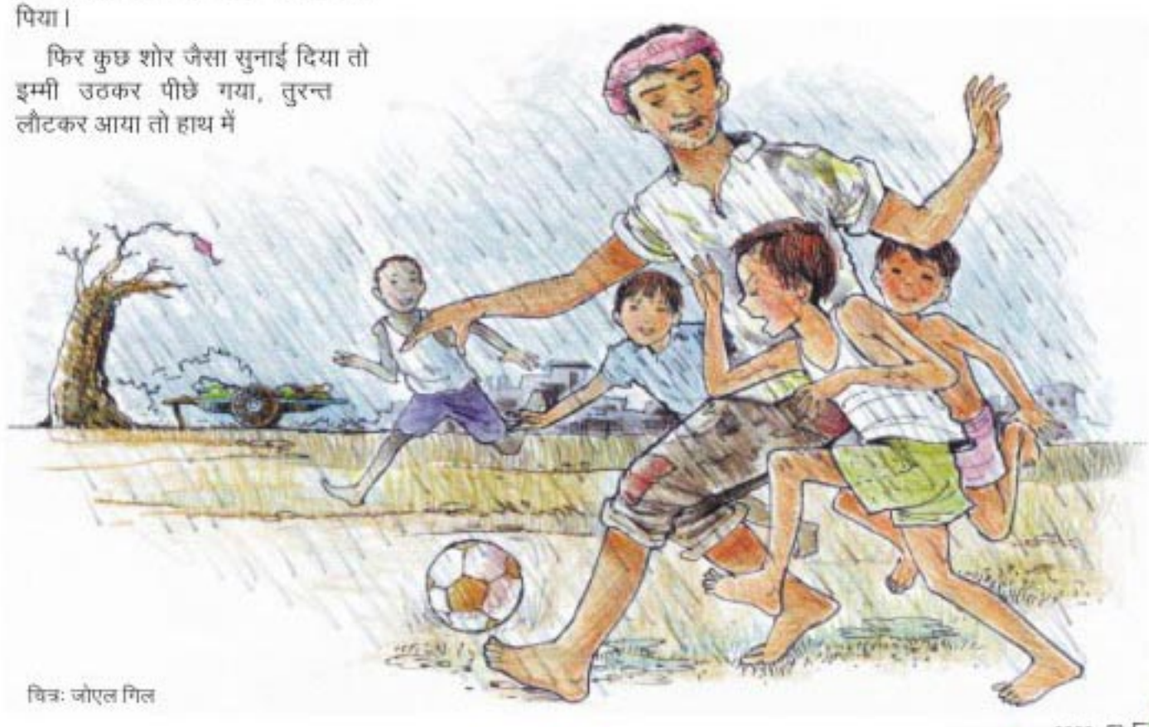

चित्र: जोएल गिल

"और फुटबॉल?" किसी ने धीरे से पूछा।

"फुटबॉल से रोटी नहीं मिलती। समझे? कोई कित्ता ही बड़ा प्लेयर हो जाए...? ये खेल-वेल सब भरे पेट वालों की बातें हैं।" इम्मी चिढ़ गया। "काम धँधा तो उसे करना ही पड़ेगा। समझे? हम लोग चुप और उदास हो गए।

राधेश्याम ने इम्मी को गले लगाकर कहा, "तेरे पिताजी की डेथ का बहुत अफसोस हुआ इम्मी!"

इम्मी बोला, "सब लिखा के लाते हैं, भैया। जब खत्म हो जाती है तो हो जाती है। फिर रोओ चाहे छाती कूटो, चाहे जो भी करो!"

इम्मी अपनी उम्र से बहुत बड़ा लग रहा था और एकदम आदमियों की तरह बोल रहा था। हम चुपचाप और मुँह लटकाए बाहर निकल गए और चले आए।

चार-पाँच साल बाद एक शाम कुछ बच्चे स्कूल के मैदान पर फुटबॉल खेल रहे थे। तभी बारिश आ गई। अँधेरा-सा हो गया था। लेकिन खेल बन्द नहीं हुआ था। कुछ बच्चे बारिश में तरबतर भीगते हुए भी खेल रहे थे। अचानक एक लम्बा-चौड़ा आदमी पता नहीं कहाँ से आया और बच्चों के साथ खेलने लगा। वह बच्चों को छका रहा था और उससे लटकने-चिपकने के बाद भी बच्चे उससे गेंद नहीं छीन पा रहे थे। घण्टे भर बाद वह आदमी अपने कपड़े निचोड़ता चुपचाप उधर चला गया जहाँ सड़क किनारे एक सब्ज़ी का ठेला तेज़ बरसात में लावारिस-सा खड़ा था।

मेरे पास सवाल हैं...

... बहुत से सवाल – हवा, मोबाइल, पानी, आकाश, पेड़, पेट्रोल, नैनो, इंटरनेट, भूत, चिड़िया, बाघ, दोस्त, हवाईजहाज़, सूर्यग्रहण, पाप, स्कूल, कथकली, भगवान... सभी के बारे में मैं सोचती हूँ। सोचती हूँ तो सवाल आते भी खूब हैं। कुछ के जवाब मिलते हैं, हो सकता है कुछ के बाद में मिलें, या मिलें ही नहीं। पर, इससे क्या...। सवाल तो फिर भी आते ही रहेंगे।

है ना!

आजकल मुझे एक बात बहुत परेशान कर रही है। असल में हमारी स्कूल की वैन रोज़ भोपाल के बड़े तालाब के पास से जाती है। मुझे खिड़की से ताल देखना बहुत अच्छा लगता है। पानी पर चमकती सूरज की किरणें। अलग-अलग मौसम में कितने सारे अलग-अलग पक्षी। ताल के किनारे मछली पकड़ने के लिए पानी में बँसी डालकर बैठे लोग (एक दिन मैं भी ऐसा ज़रूर करूँगी), ताल में नहाते, मस्तियाँ करते बच्चे, कश्तियाँ...। पिछले कुछ महीनों से मैंने महसूस किया कि ताल में पानी कुछ कम होता जा

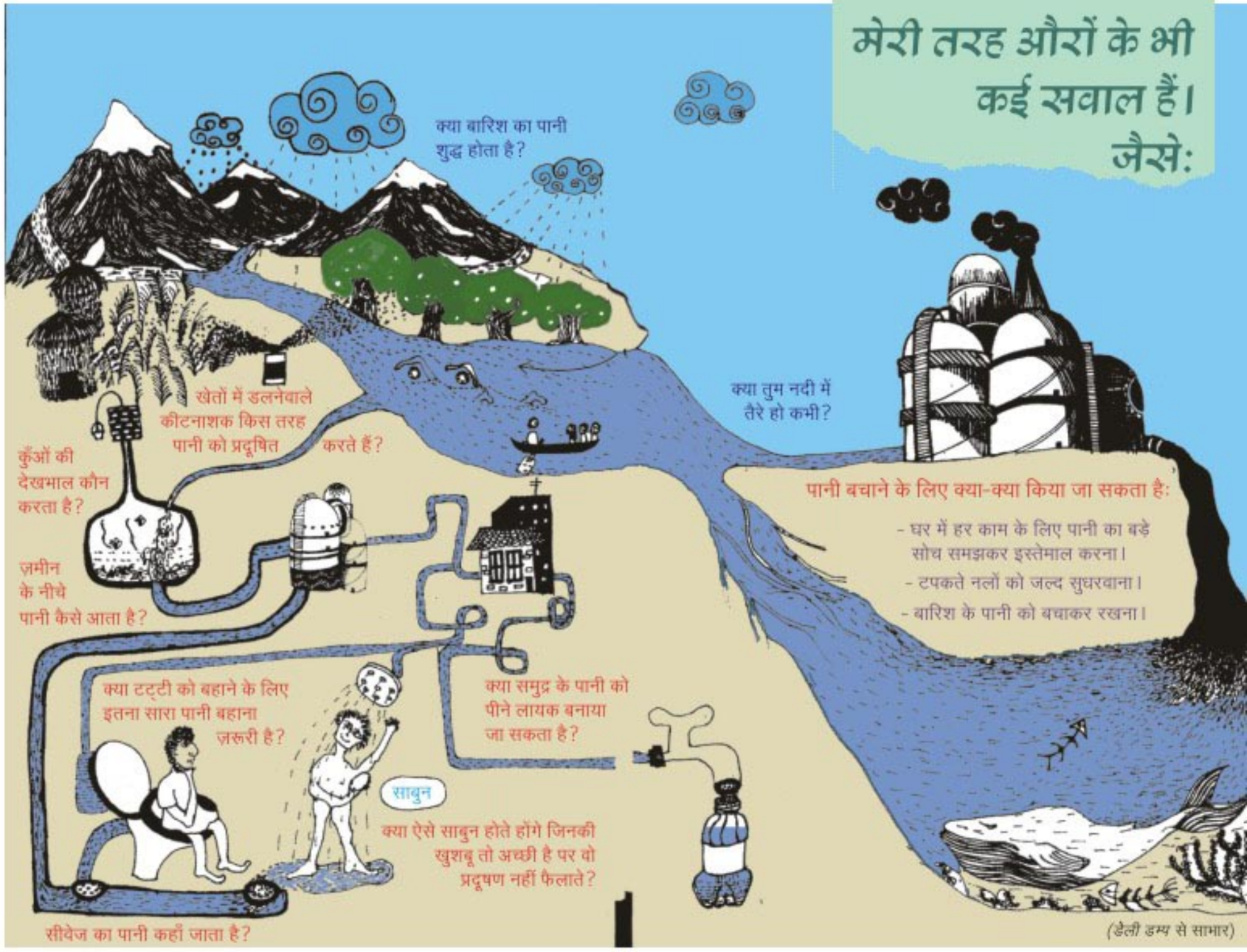

रहा है। नावों की जगह अब वहाँ ट्रक नज़र आने लगे थे। एक शाम हम तालाब गए। तालाब के बीच में एक टेकरी पर दरगाह बनी है। पहले तो साल भर हम इस दरगाह पर नाव में बैठकर ही जाते थे। यहाँ जाने का बस यही तो तरीका था। पर, इस बार हम यहाँ पैदल गए। मैं हैरान हूँ – कहाँ गया इतना सारा पानी? पिछले तीन-चार महीनों से अखबार में पानी को लेकर कई तरह की खबरें/फोटो छप रही हैं – तालाब को गहरा करते लोगों की फोटो – किस मोहल्ले में कितने दिन बाद और कब पानी आएगा इसका टाइमटेबिल – पानी के लिए लम्बी लाइन में खड़े लोग – पानी की लड़ाई में मारे गए या घायल लोग। मैंने पढ़ा कि इंदौर का सिरपुर तालाब भी काफी सूख गया है। होशंगाबाद से बहती नर्मदा नदी सूखकर कैसी पतली-सी रह गई है। और जयपुर में आमेर किले के नीचे बना तालाब तो पूरा का पूरा सूख गया है। हमारे घर के बोरवेल में पहले तो हमेशा पानी रहता था। अब तो रात को 11-12 बजे या सुबह 4 बजे मोटर चलाओ तभी पानी आता है। इसी तरह सब तालाब, नदियाँ, ज़मीन के नीचे का पानी सूखते रहे तो हम जिएँगे कैसे? ऐसा क्यों हुआ इस साल? बारिश कम हुई या तेज़ सूरज ने सारे पानी को भाप बना दिया? या फिर दोनों ही हुए? इन सवालों से अब डर लगने लगा है मुझे...

– तुम्हारी दोस्त अनारको